रामचरितमानस

सुन्दरकाण्ड

हनुमान्-विभीषण संवाद

दोहा :

*** रामायुध अंकित गृह सोभा बरनि न जाइ। नव तुलसिका बृंद तहँ देखि हरष कपिराई॥5॥

भावार्थ:-

वह महल श्री रामजी के आयुध (धनुष-बाण) के चिह्नों से अंकित था, उसकी शोभा वर्णन नहीं की जा सकती। वहाँ नवीन-नवीन तुलसी के वृक्ष-समूहों को देखकर कपिराज श्री हनुमान्‌जी हर्षित हुए॥5॥

चौपाई :

*** लंका निसिचर निकर निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा॥ मन महुँ तरक करैं कपि लागा। तेहीं समय बिभीषनु जागा॥1॥

भावार्थ:-

लंका तो राक्षसों के समूह का निवास स्थान है। यहाँ सज्जन (साधु पुरुष) का निवास कहाँ? हनुमान्‌जी मन में इस प्रकार तर्क करने लगे। उसी समय विभीषणजी जागे॥1॥

*** राम राम तेहिं सुमिरन कीन्हा। हृदयँ हरष कपि सज्जन चीन्हा॥ एहि सन सठि करिहउँ पहिचानी। साधु ते होइ न कारज हानी॥2॥

भावार्थ:-

उन्होंने (विभीषण ने) राम नाम का स्मरण (उच्चारण) किया। हनमान्‌जी ने उन्हें सज्जन जाना और हृदय में हर्षित हुए। (हनुमान्‌जी ने विचार किया कि) इनसे हठ करके (अपनी ओर से ही) परिचय करूँगा, क्योंकि साधु से कार्य की हानि नहीं होती। (प्रत्युत लाभ ही होता है)॥2॥

*** बिप्र रूप धरि बचन सुनाए। सुनत बिभीषन उठि तहँ आए॥ करि प्रनाम पूँछी कुसलाई। बिप्र कहहु निज कथा बुझाई॥3॥

भावार्थ:-

ब्राह्मण का रूप धरकर हनुमान्‌जी ने उन्हें वचन सुनाए (पुकारा)। सुनते ही विभीषणजी उठकर वहाँ आए। प्रणाम करके कुशल पूछी (और कहा कि) हे ब्राह्मणदेव! अपनी कथा समझाकर कहिए॥3॥

*** की तुम्ह हरि दासन्ह महँ कोई। मोरें हृदय प्रीति अति होई॥ की तुम्ह रामु दीन अनुरागी। आयहु मोहि करन बड़भागी॥4॥

भावार्थ:-

क्या आप हरिभक्तों में से कोई हैं? क्योंकि आपको देखकर मेरे हृदय में अत्यंत प्रेम उमड़ रहा है। अथवा क्या आप दीनों से प्रेम करने वाले स्वयं श्री रामजी ही हैं जो मुझे बड़भागी बनाने (घर-बैठे दर्शन देकर कृतार्थ करने) आए हैं?॥4॥

दोहा :

*** तब हनुमंत कही सब राम कथा निज नाम। सुनत जुगल तन पुलक मन मगन सुमिरि गुन ग्राम॥6॥

भावार्थ:-

तब हनुमान्‌जी ने श्री रामचंद्रजी की सारी कथा कहकर अपना नाम बताया। सुनते ही दोनों के शरीर पुलकित हो गए और श्री रामजी के गुण समूहों का स्मरण करके दोनों के मन (प्रेम और आनंद में) मग्न हो गए॥6॥

चौपाई :

*** सुनहु पवनसुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हि महुँ जीभ बिचारी॥ तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा। करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा॥1॥

भावार्थ:-

(विभीषणजी ने कहा-) हे पवनपुत्र! मेरी रहनी सुनो। मैं यहाँ वैसे ही रहता हूँ जैसे दाँतों के बीच में बेचारी जीभ। हे तात! मुझे अनाथ जानकर सूर्यकुल के नाथ श्री रामचंद्रजी क्या कभी मुझ पर कृपा करेंगे?॥1॥

***तामस तनु कछु साधन नाहीं। प्रीत न पद सरोज मन माहीं॥ अब मोहि भा भरोस हनुमंता। बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं संता॥2॥

भावार्थ:-

मेरा तामसी (राक्षस) शरीर होने से साधन तो कुछ बनता नहीं और न मन में श्री रामचंद्रजी के चरणकमलों में प्रेम ही है, परंतु हे हनुमान्‌! अब मुझे विश्वास हो गया कि श्री रामजी की मुझ पर कृपा है, क्योंकि हरि की कृपा के बिना संत नहीं मिलते॥2॥

*** जौं रघुबीर अनुग्रह कीन्हा। तौ तुम्ह मोहि दरसु हठि दीन्हा॥ सुनहु बिभीषन प्रभु कै रीती। करहिं सदा सेवक पर प्रीति॥3॥

भावार्थ:-

जब श्री रघुवीर ने कृपा की है, तभी तो आपने मुझे हठ करके (अपनी ओर से) दर्शन दिए हैं। (हनुमान्‌जी ने कहा-) हे विभीषणजी! सुनिए, प्रभु की यही रीति है कि वे सेवक पर सदा ही प्रेम किया करते हैं॥3॥

*** कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबहीं बिधि हीना॥ प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा॥4॥

भावार्थ:-

भला कहिए, मैं ही कौन बड़ा कुलीन हूँ? (जाति का) चंचल वानर हूँ और सब प्रकार से नीच हूँ प्रातःकाल जो हम लोगों (बंदरों) का नाम ले ले तो उस दिन उसे भोजन न मिले॥4॥

दोहा :

*** अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर। कीन्हीं कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर॥7॥

भावार्थ:-

हे सखा! सुनिए, मैं ऐसा अधम हूँ, पर श्री रामचंद्रजी ने तो मुझ पर भी कृपा ही की है। भगवान् के गुणों का स्मरण करके हनुमान्‌जी के दोनों नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया॥7॥

चौपाई :

*** जानतहूँ अस स्वामि बिसारी। फिरहिं ते काहे न होहिं दुखारी॥ एहि बिधि कहत राम गुन ग्रामा। पावा अनिर्बाच्य बिश्रामा॥1॥

भावार्थ:-

जो जानते हुए भी ऐसे स्वामी (श्री रघुनाथजी) को भुलाकर (विषयों के पीछे) भटकते फिरते हैं, वे दुःखी क्यों न हों? इस प्रकार श्री रामजी के गुण समूहों को कहते हुए उन्होंने अनिर्वचनीय (परम) शांति प्राप्त की॥1॥

*** पुनि सब कथा बिभीषन कही। जेहि बिधि जनकसुता तहँ रही॥ तब हनुमंत कहा सुनु भ्राता। देखी चहउँ जानकी माता॥2॥

भावार्थ:-

फिर विभीषणजी ने, श्री जानकीजी जिस प्रकार वहाँ (लंका में) रहती थीं, वह सब कथा कही। तब हनुमान्‌जी ने कहा- हे भाई सुनो, मैं जानकी माता को देखता चाहता हूँ॥2॥

हनुमान्‌जी का अशोक वाटिका में सीताजी को देकर दुःखी होना और रावण का सीताजी को भय दिखलाना

*** जुगुति बिभीषन सकल सुनाई। चलेउ पवन सुत बिदा कराई॥ करि सोइ रूप गयउ पुनि तहवाँ। बन असोक सीता रह जहवाँ॥3॥

भावार्थ:-

विभीषणजी ने (माता के दर्शन की) सब युक्तियाँ (उपाय) कह सुनाईं। तब हनुमान्‌जी विदा लेकर चले। फिर वही (पहले का मसक सरीखा) रूप धरकर वहाँ गए, जहाँ अशोक वन में (वन के जिस

भाग में) सीताजी रहती थीं॥3॥

*** देखि मनहि महुँ कीन्ह प्रनामा। बैठेहिं बीति जात निसि जामा॥ कृस तनु सीस जटा एक बेनी। जपति हृदयँ रघुपति गुन श्रेनी॥4॥

भावार्थ:-

सीताजी को देखकर हनुमान्‌जी ने उन्हें मन ही में प्रणाम किया। उन्हें बैठे ही बैठे रात्रि के चारों पहर बीत जाते हैं। शरीर दुबला हो गया है, सिर पर जटाओं की एक वेणी (लट) है। हृदय में श्री रघुनाथजी के गुण समूहों का जाप (स्मरण) करती रहती हैं॥4॥

दोहा :

*** निज पद नयन दिएँ मन राम पद कमल लीन। परम दुखी भा पवनसुत देखि जानकी दीन॥8॥

भावार्थ:-

श्री जानकीजी नेत्रों को अपने चरणों में लगाए हुए हैं (नीचे की ओर देख रही हैं) और मन श्री रामजी के चरण कमलों में लीन है। जानकीजी को दीन (दुःखी) देखकर पवनपुत्र हनुमान्‌जी बहुत ही दुःखी हुए॥8॥

चौपाई :

*** तरु पल्लव महँ रहा लुकाई। करइ बिचार करौं का भाई॥ तेहि अवसर रावनु तहँ आवा। संग नारि बहु किएँ बनावा॥1॥

भावार्थ:-

हनुमान्‌जी वृक्ष के पत्तों में छिप रहे और विचार करने लगे कि हे भाई! क्या करूँ (इनका दुःख कैसे दूर करूँ)? उसी समय बहुत सी स्त्रियों को साथ लिए सजधजकर रावण वहाँ आया॥1॥

*** बहु बिधि खल सीतहि समुझावा। साम दान भय भेद देखावा॥ कह रावनु सुनु सुमुखि सयानी। मंदोदरी आदि सब रानी॥2॥

भावार्थ:-

उस दुष्ट ने सीताजी को बहुत प्रकार से समझाया। साम, दान, भय और भेद दिखलाया। रावण ने कहा- हे सुमुखि! हे सयानी! सुनो! मंदोदरी आदि सब रानियों को-॥2॥

*** तव अनुचरीं करउँ पन मोरा। एक बार बिलोकु मम ओरा॥ तृन धरि ओट कहति बैदेही। सुमिरि अवधपति परम सनेही॥3॥

भावार्थ:-

मैं तुम्हारी दासी बना दूँगा, यह मेरा प्रण है। तुम एक बार मेरी ओर देखो तो सही! अपने परम स्नेही कोसलाधीश श्री रामचंद्रजी का स्मरण करके जानकीजी तिनके की आड़ (परदा) करके कहने लगीं-॥3॥

*** सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा। कबहुँ कि नलिनी करइ बिकासा॥ अस मन समुझु कहति

जानकी। खल सुधि नहिं रघुबीर बान की॥4॥

भावार्थ:-

हे दशमुख! सुन, जुगनू के प्रकाश से कभी कमलिनी खिल सकती है? जानकीजी फिर कहती हैं- तू (अपने लिए भी) ऐसा ही मन में समझ ले। रे दुष्ट! तुझे श्री रघुवीर के बाण की खबर नहीं है॥4॥

*** सठ सूनें हरि आनेहि मोही। अधम निलज्ज लाज नहिं तोही॥5॥

भावार्थ:-

रे पापी! तू मुझे सूने में हर लाया है। रे अधम! निर्लज्ज! तुझे लज्जा नहीं आती?॥5॥

दोहा :

*** आपुहि सुनि खद्योत सम रामहि भानु समान। परुष बचन सुनि काढ़ि असि बोला अति खिसिआन॥9॥

भावार्थ:-

अपने को जुगनू के समान और रामचंद्रजी को सूर्य के समान सुनकर और सीताजी के कठोर वचनों को सुनकर रावण तलवार निकालकर बड़े गुस्से में आकर बोला-॥9॥

चौपाई :

*** सीता तैं मम कृत अपमाना। कटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना॥ नाहिं त सपदि मानु मम बानी। सुमुखि होति न त जीवन हानी॥1॥

भावार्थ:-

सीता! तूने मेरा अपनाम किया है। मैं तेरा सिर इस कठोर कृपाण से काट डालूँगा। नहीं तो (अब भी) जल्दी मेरी बात मान ले। हे सुमुखि! नहीं तो जीवन से हाथ धोना पड़ेगा॥1॥

*** स्याम सरोज दाम सम सुंदर। प्रभु भुज करि कर सम दसकंधर॥ सो भुज कंठ कि तव असि घोरा। सुनु सठ अस प्रवान पन मोरा॥2॥

भावार्थ:-

(सीताजी ने कहा-) हे दशग्रीव! प्रभु की भुजा जो श्याम कमल की माला के समान सुंदर और हाथी की सूँड के समान (पुष्ट तथा विशाल) है, या तो वह भुजा ही मेरे कंठ में पड़ेगी या तेरी भयानक तलवार ही। रे शठ! सुन, यही मेरा सच्चा प्रण है॥2॥

*** चंद्रहास हरु मम परितापं। रघुपति बिरह अनल संजातं॥ सीतल निसित बहसि बर धारा। कह सीता हरु मम दुख भारा॥3॥

भावार्थ:-

सीताजी कहती हैं- हे चंद्रहास (तलवार)! श्री रघुनाथजी के विरह की अग्नि से उत्पन्न मेरी बड़ी भारी जलन को तू हर ले, हे तलवार! तू शीतल, तीव्र और श्रेष्ठ धारा बहाती है (अर्थात् तेरी धारा ठंडी और तेज है), तू मेरे दुःख के बोझ को हर ले॥3॥

चौपाई :

*** सुनत बचन पुनि मारन धावा। मयतनयाँ कहि नीति बुझावा॥ कहेसि सकल निसिचरिन्ह बोलाई। सीतहि बहु बिधि त्रासहु जाई॥4॥

भावार्थ:-

सीताजी के ये वचन सुनते ही वह मारने दौड़ा। तब मय दानव की पुत्री मन्दोदरी ने नीति कहकर उसे समझाया। तब रावण ने सब दासियों को बुलाकर कहा कि जाकर सीता को बहुत प्रकार से भय दिखलाओ॥4॥

*** मास दिवस महुँ कहा न माना। तौ मैं मारबि काढ़ि कृपाना॥5॥

भावार्थ:-

यदि महीने भर में यह कहा न माने तो मैं इसे तलवार निकालकर मार डालूँगा॥5॥

दोहा :

*** भवन गयउ दसकंधर इहाँ पिसाचिनि बृंद। सीतहि त्रास देखावहिं धरहिं रूप बहु मंद॥10॥

भावार्थ:-

(यों कहकर) रावण घर चला गया। यहाँ राक्षसियों के समूह बहुत से बुरे रूप धरकर सीताजी को भय दिखलाने लगे॥10॥

चौपाई :

*** त्रिजटा नाम राच्छसी एका। राम चरन रति निपुन बिबेका॥ सबन्हौ बोलि सुनाएसि सपना। सीतहि सेइ करहु हित अपना॥1॥

भावार्थ:-

उनमें एक त्रिजटा नाम की राक्षसी थी। उसकी श्री रामचंद्रजी के चरणों में प्रीति थी और वह विवेक (ज्ञान) में निपुण थी। उसने सबों को बुलाकर अपना स्वप्न सुनाया और कहा- सीताजी की सेवा करके अपना कल्याण कर लो॥1॥

*** सपनें बानर लंका जारी। जातुधान सेना सब मारी॥ खर आरूढ़ नगन दससीसा। मुंडित सिर खंडित भुज बीसा॥2॥

भावार्थ:-

स्वप्न (मैंने देखा कि) एक बंदर ने लंका जला दी। राक्षसों की सारी सेना मार डाली गई। रावण नंगा है और गदहे पर सवार है। उसके सिर मुँडे हुए हैं, बीसों भुजाएँ कटी हुई हैं॥2॥

*** एहि बिधि सो दच्छिन दिसि जाई। लंका मनहुँ बिभीषन पाई॥ नगर फिरी रघुबीर दोहाई। तब प्रभु सीता बोलि पठाई॥3॥

भावार्थ:-

इस प्रकार से वह दक्षिण (यमपुरी की) दिशा को जा रहा है और मानो लंका विभीषण ने पाई है। नगर में श्री रामचंद्रजी की दुहाई फिर गई। तब प्रभु ने सीताजी को बुला भेजा॥3॥

*** यह सपना मैं कहउँ पुकारी। होइहि सत्य गएँ दिन चारी॥ तासु बचन सुनि ते सब डरीं। जनकसुता के चरनन्हि परीं॥4॥

भावार्थ:-

मैं पुकारकर (निश्चय के साथ) कहती हूँ कि यह स्वप्न चार (कुछ ही) दिनों बाद सत्य होकर रहेगा। उसके वचन सुनकर वे सब राक्षसियाँ डर गईं और जानकीजी के चरणों पर गिर पड़ीं॥4॥

श्री सीता-त्रिजटा संवाद

दोहा :

*** जहँ तहँ गईं सकल तब सीता कर मन सोच। मास दिवस बीतें मोहि मारिहि निसिचर पोच॥11॥

भावार्थ:-

तब (इसके बाद) वे सब जहाँ-तहाँ चली गईं। सीताजी मन में सोच करने लगीं कि एक महीना बीत जाने पर नीच राक्षस रावण मुझे मारेगा॥11॥

चौपाई :

*** त्रिजटा सन बोलीं कर जोरी। मातु बिपति संगिनि तैं मोरी॥ तजौं देह करु बेगि उपाई। दुसह बिरहु अब नहिं सहि जाई॥1॥

भावार्थ:-

सीताजी हाथ जोड़कर त्रिजटा से बोलीं- हे माता! तू मेरी विपत्ति की संगिनी है। जल्दी कोई ऐसा उपाय कर जिससे मैं शरीर छोड़ सकूँ। विरह असहम हो चला है, अब यह सहा नहीं जाता॥1॥

*** आनि काठ रचु चिता बनाई। मातु अनल पुनि देहि लगाई॥ सत्य करहि मम प्रीति सयानी। सुनै को श्रवन सूल सम बानी॥2॥

भावार्थ:-

काठ लाकर चिता बनाकर सजा दे। हे माता! फिर उसमें आग लगा दे। हे सयानी! तू मेरी प्रीति को सत्य कर दे। रावण की शूल के समान दुःख देने वाली वाणी कानों से कौन सुने?॥2॥

*** सुनत बचन पद गहि समुझाएसि। प्रभु प्रताप बल सुजसु सुनाएसि॥ निसि न अनल मिल सुनु सुकुमारी। अस कहि सो निज भवन सिधारी॥3॥

भावार्थ:-

सीताजी के वचन सुनकर त्रिजटा ने चरण पकड़कर उन्हें समझाया और प्रभु का प्रताप, बल और सुयश सुनाया। (उसने कहा-) हे सुकुमारी! सुनो रात्रि के समय आग नहीं मिलेगी। ऐसा कहकर वह अपने घर चली गई॥3॥

*** कह सीता बिधि भा प्रतिकूला। मिलिहि न पावक मिटिहि न सूला॥ देखिअत प्रगट गगन अंगारा। अवनि न आवत एकउ तारा॥4॥

भावार्थ:-

सीताजी (मन ही मन) कहने लगीं- (क्या करूँ) विधाता ही विपरीत हो गया। न आग मिलेगी, न पीड़ा मिटेगी। आकाश में अंगारे प्रकट दिखाई दे रहे हैं, पर पृथ्वी पर एक भी तारा नहीं आता॥4॥

*** पावकमय ससि स्रवत न आगी। मानहुँ मोहि जानि हतभागी॥ सुनहि बिनय मम बिटप असोका। सत्य नाम करु हरु मम सोका॥5॥

भावार्थ:-

चंद्रमा अग्निमय है, किंतु वह भी मानो मुझे हतभागिनी जानकर आग नहीं बरसाता। हे अशोक वृक्ष! मेरी विनती सुन। मेरा शोक हर ले और अपना (अशोक) नाम सत्य कर॥5॥

***नूतन किसलय अनल समाना। देहि अगिनि जनि करहि निदाना॥ देखि परम बिरहाकुल सीता। सो छन कपिहि कलप सम बीता॥6॥

भावार्थ:-

तेरे नए-नए कोमल पत्ते अग्नि के समान हैं। अग्नि दे, विरह रोग का अंत मत कर (अर्थात् विरह रोग को बढ़ाकर सीमा तक न पहुँचा) सीताजी को विरह से परम व्याकुल देखकर वह क्षण हनुमान्‌जी को कल्प के समान बीता॥6॥

श्री सीता-हनुमान् संवाद

सोरठा :

*** कपि करि हृदयँ बिचार दीन्हि मुद्रिका डारि तब। जनु असोक अंगार दीन्ह हरषि उठि कर गहेउ॥12॥

भावार्थ:-

तब हनुमान्‌जी ने हृदय में विचार कर (सीताजी के सामने) अँगूठी डाल दी, मानो अशोक ने अंगारा दे दिया। (यह समझकर) सीताजी ने हर्षित होकर उठकर उसे हाथ में ले लिया॥12॥

चौपाई :

*** तब देखी मुद्रिका मनोहर। राम नाम अंकित अति सुंदर॥ चकित चितव मुदरी पहिचानी। हरष बिषाद हृदयँ अकुलानी॥1॥

भावार्थ:-

तब उन्होंने राम-नाम से अंकित अत्यंत सुंदर एवं मनोहर अँगूठी देखी। अँगूठी को पहचानकर सीताजी आश्चर्यचकित होकर उसे देखने लगीं और हर्ष तथा विषाद से हृदय में अकुला उठीं॥1॥

*** जीति को सकइ अजय रघुराई। माया तें असि रचि नहिं जाई॥ सीता मन बिचार कर नाना। मधुर बचन बोलेउ हनुमाना॥2॥

भावार्थ:-

(वे सोचने लगीं-) श्री रघुनाथजी तो सर्वथा अजेय हैं, उन्हें कौन जीत सकता है? और माया से ऐसी (माया के उपादान से सर्वथा रहित दिव्य, चिन्मय) अँगूठी बनाई नहीं जा सकती। सीताजी मन में अनेक प्रकार के विचार कर रही थीं। इसी समय हनुमान्‌जी मधुर वचन बोले-॥2॥

*** रामचंद्र गुन बरनैं लागा। सुनतहिं सीता कर दुख भागा॥ लागीं सुनैं श्रवन मन लाई। आदिहु तें सब कथा सुनाई॥3॥

भावार्थ:-

वे श्री रामचंद्रजी के गुणों का वर्णन करने लगे, (जिनके) सुनते ही सीताजी का दुःख भाग गया। वे कान और मन लगाकर उन्हें सुनने लगीं। हनुमान्‌जी ने आदि से लेकर अब तक की सारी कथा कह सुनाई॥3॥

*** श्रवनामृत जेहिं कथा सुहाई। कही सो प्रगट होति किन भाई॥ तब हनुमंत निकट चलि गयऊ। फिरि बैठीं मन बिसमय भयऊ ॥4॥

भावार्थ:-

(सीताजी बोलीं-) जिसने कानों के लिए अमृत रूप यह सुंदर कथा कही, वह हे भाई! प्रकट क्यों नहीं होता? तब हनुमान्‌जी पास चले गए। उन्हें देखकर सीताजी फिरकर (मुख फेरकर) बैठ गईं? उनके मन में आश्चर्य हुआ॥4॥

*** राम दूत मैं मातु जानकी। सत्य सपथ करुनानिधान की॥ यह मुद्रिका मातु मैं आनी। दीन्हि राम तुम्ह कहँ सहिदानी॥5॥

भावार्थ:-

(हनुमान्‌जी ने कहा-) हे माता जानकी मैं श्री रामजी का दूत हूँ। करुणानिधान की सच्ची शपथ करता हूँ, हे माता! यह अँगूठी मैं ही लाया हूँ। श्री रामजी ने मुझे आपके लिए यह सहिदानी (निशानी या पहिचान) दी है॥5॥

*** नर बानरहि संग कहु कैसें। कही कथा भइ संगति जैसें॥6॥

भावार्थ:-

(सीताजी ने पूछा-) नर और वानर का संग कहो कैसे हुआ? तब हनुमानजी ने जैसे संग हुआ था, वह सब कथा कही॥6॥

दोहा :

*** कपि के बचन सप्रेम सुनि उपजा मन बिस्वास जाना मन क्रम बचन यह कृपासिंधु कर दास॥13॥

भावार्थ:-

हनुमान्‌जी के प्रेमयक्त वचन सुनकर सीताजी के मन में विश्वास उत्पन्न हो गया, उन्होंने जान लिया कि यह मन, वचन और कर्म से कृपासागर श्री रघुनाथजी का दास है॥13॥ ***अगला पेज...***